© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 10 | October – December 2017

दलितो की मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिनिष्ठ समस्याये

डॉ. राकेश कुमारी (Lecturer in Hindi),GGSSS. Barwala Pkl. (Haryana

प्रस्तावना

दलित शब्द का व्यापक रूप से अर्थ पीडित व कुचला हुआ के लिए प्रयुक्त हुआ है। दलिज जीवन का सहज व संक्षिप्त अर्थ है दलितो का जीवन। परन्तु आज के सामाजिक संदर्भ में दलित का अर्थ होगा वह जाति, वह समुदाय जिसको अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था द्वारा कही न कही दबाया गया है, रौंदा गया है, दूषित किया गया है। इस प्रकार दलित वर्ग में वे सभी लोग व जातियाँ शामिल हैं। जो समाज व उच्च वर्ग द्वारा शोषित है। लेकिन कुछ वर्षों से दलित का अर्थ अनुसूचित जाति से लिया जाने लगा है।

हमारे समाज में दलित जातियों को विभिन्न नामो से सम्बोधित किया गया है। उनके लिए अशुद्ध, अछूत, अत्यंज, हरिजन, बाहरी जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजाति आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा है। इन शब्दों के साथ किसी न किसी प्रकार से अपमान का भाव छिपा हुआ है। अतः आधुनिक काल में इन अपमान सूचक शब्दों के स्थान पर दलित वर्ग शब्द का प्रयोग होने लगा है। और यह शब्द अब शनैः शनैः अत्याधिक प्रचलित हो रहा है। यहाँ तक कि साहित्य में भी दलित साहित्य नामक नये संबर्ग की वृद्धि हुई है।

दलित जातियों को दबाने में, शोषण करने में सामाजिक सोच का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन अयोग्यताओं के कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने तथा अपने व्यक्तित्व के विकास का कोई अवसर नहीं मिला। ये अयोग्यतायें उनके लिए अभिशाप प्रमाणित हुई। वर्षों तक उन्हें दासों से भी गया गुजरा जीवन बिताने पर मजबूर होना पड़ा। उनको तमाम प्रकार के सुखो से वंचित रखा गया। जिसकी वजह से दलितों में अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिगत समस्याएँ उत्पन्न हुई। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने दलितों की मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिगत समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

1. मनोवैज्ञानिक समस्याऐं

भाग्य कर्मफल और पुजनर्जन्म आदि के सिदान्तों के बारे में कुछ धर्मपरायण विद्वानों का यह तर्क है कि ये सिदान्त आध्यात्मिक महत्व के ही नहीं भौतिक स्तर पर मनोवैज्ञानिक महत्व के भी है। वे मानते है, न केवल यह कि व्यक्ति को ये घोर हताश की स्थिति में संभालते है, बल्कि यह भी कि समाज विरोधी आचरण से विरत रहने की मनोवैज्ञानिक तैयारी में सहायक होते है' इन तर्को के पक्ष या विपक्ष में बहुत दूर तक जाने का मौका यहाँ नहीं है जरूरी यहाँ सिर्फ यह देखना है कि लोगों में इन सिद्धान्तों के प्रति विश्वास का व्यवहारिक फायदा किसको अधिक मिला? नीचे जाहिर है कि निचली श्रेणी के लोगों का अपना जीवन स्तर मानवीय बनाने में इनसे कोई फायदा नहीं मिला। उलटे निचली

श्रेणी के लोगों में कर्म फल आदि सिद्धान्तों में विश्वास के कारण एक ऐसा मनोवैज्ञानिक परिवेश अपने पूरे ताम झाम के साथ रच उठा जिससे न तो अपनी दुरवस्था के मानव कृत कारण समझने की इच्छा उनमें जाग सकी और न ही सच्चा आत्म बोध उनको हो सका। आत्म बोधा की जगह दूसरे का दिया हुआ पाप बोध ही ढोते रह गये।

दलित वर्ग ने अपनी दुरवस्था के मानव कृत कारण क्षेणी–कम वाले समाज में दनकी मिला जो ऊपर की श्रेणी में थे, या उनके जो पिचली श्रेणी में थें? के लिए चेतना अर्जित की और जिसका विकास करते हुए दलित वर्ग ने पाप–बोध की जगह बच्चे आत्म बोधा के लिए अवकाश बनाया। इसके लिए उसे उस हिन्दुमानस से सीधे दो चार होना पड़ा जिसमें एक ओर आतमवत् सर्वभूतोषु की दुहाई भी तरंगायित होती थी और दूसरी और पुण्यात्मा और पापत्मा की विभाजन भी होता था। पुण्यात्मा होने की दावेदारी ऊँची जातियों की होती थी, पापत्मा होने का भोग नीची जातियों को भोगना पड़ता था।

हिन्दु मानस के एक सांस्कृतिक व्याख्याकार डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी हमें बताते है कि हिन्दू मानस के अनेक अंतविरोधी में सबसे दिलचस्प है सूक्ष्म अदैत दर्शन और जड़ीभूत जाति व्यवस्था का सह अस्तित्व ध्यान देना चाहिए कि जो सह अस्तित्व एक अभिशाप की तरह दलित वर्ग की जिन्दगी में मॅडराता रहा और उसे नरक बनाता रहा उसके बारे में पं. रामस्वरूप चतुर्वेदी यह नहीं कहते है कि वह सबसे भयानक है बल्कि कहते है सबसे दिलचस्प है। सबसे दिलचस्प कहने के कारण शायद चतुर्वेदी जी इस विश्वास में निहित है कि एकत्व का परम रूप अद्वैत में और वैविध्य की बाहर जाति प्रथा में है चतुर्वेदी जी इसे एक व्यावहारिक सच मानकर चलना चाहते है कि ये दोनों छोर हिन्दू व्यवस्था में बड़े इत्मीनान के साथ समांए हुए है। दलित चेतना का यथार्थ इसे व्यावहारिक सच दलितों ने इसकी विडम्बना भोगी है। इसलिए वे हिन्दू व्यवस्था में बड़े इम्तीनान की जगह बड़ी खलबली पैदा करना ही अधिक रचनात्मक मानते है। बड़े इत्मीनान का एहसास अपने मन में सुरक्षित रखने के लिए चतुर्वेदी जी सरीखे हिन्दु व्यवस्था के आधुनिकतवादी पंडित यह भ्रम पालते है कि मनु के विधान में मनु के लिए पूरा स्थान है। दलित मानसिकता का यथार्थ तो यह है कि अम्बेड़कर के विधान में मनु के लिए पूरा क्या थोड़ा भी स्थान नहीं है। अम्बेड़कर और मनु वस्तुत दो विपरित मानिसकताओं के प्रतीक हैं। उनमें विरोध की स्वाभाविक है सामंजस्य नहीं। इसी प्रकार की एक घटना भी इस मनोविज्ञान से जुड़ी हुई नजर आती है। मोहनदास बारह वर्ष के थे उनका हम उम्र हरिजन लड़का उका पाखना साफ करने और आँगन बुहारने आता था। वह गाँधी का मित्र हो गया। उन्होंने लिखा हैं कि वे अपनी बा से हमेशा यही पूछते थे उका को छूंने में क्या दोष है। उसे छूने से उन्हें क्यों रोका जाता है। मोहन दास अगर उका को छू देते थे उन्हें नहाना पड़ता था। बा की भावना को ध्यान में रखकर वैसा कर लेते थे। लेकिन बा से स्पष्ट कहते भी थे उनका यह कहना गलत है कि उका को छूना पाप है।

भारतीय समाज खासतौर से जातीय हिंदू समाज कारण देश में दलित्य पनपा और आज भी अपने विकृत रूप में मौजूद है विचित्र और परस्पर विरोधी मानसिकताओं का पुंज

बनकर रह गया है। यह सब हजारों वर्षों से चले आ रहे है मानसिक और मनोवैज्ञानिक अवरोधो का प्रतिफल है। ये मानसिक ग्रंथियाँ ही विभिन्न स्तरों पर अपने को सही साबित करती हुई दालित्य को बढ़ाती ही नहीं गई उसे अस्पृश्यता और दमन का शिकार भी बनाती गई। इसी का फल था कि दालित्य को भी यह समझाया गया कि दालित्य कर्मफल है। इस मान्यता का विरोध दलितों में भी था दलित भक्तों ने यह काम भक्ति के माध्यम से किया रविदास जैसे दलित संत अपने इष्टदेव के सवर्ण भक्तों में अधिक निकट थे। मीरा जैसी राज परिवार से जुडी क्षत्राणी ने अपने जातीय अंहकार को छोड़कर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। लेकिन अभिमानी सवर्णे की जड़ चेतना में कोई अन्तर नहीं पड़ा 1914 में सरस्वती में छपी हीरा डोम की कविता अछूत की शिकायत इसका उदाहरण है दुःख और दीवता के साथ–साथ उसमें गुस्सा भी है और प्रकारांतर से कर्मवाद का विरोध भी हैं।

''प्नही से पिटि पिटि हाथ गोड़ तुडि दैले
हमनी से एतनी काही के हककानी?''

आधुनिक मराठी कवि शंबूक वे सीधो ही लिखाः

पूर्व जन्म का फल बताकर
नियति के बहान
सदियों से मेरी जिंदगी का शोषण किया
मेरी बुद्धि पर कील ठोंकी––––? ''

ज्ञान विज्ञान की परिधि से हजारों वर्षों तक बहार धकेले रखने का अर्थ है बुद्वि पर कील ठोकना था। इस विरोध और गुस्से के बीच भी सवर्ण विमर्श उनकी इस भावना को पुख्ता हील करता गया। वर्तमान दलित लेखन इस दृष्टि से इस मानसिकता के विरूद्ध एक सार्थक और विद्रोहात्मक आंदोलन है रमणिका गुप्ता ने दलित कहानियों में यथार्थ निबंध में लिखा है ''दलित साहित्य परिवर्तन के लिए लिखा जाने वाला साहित्य है। यह एक बहुत विशाल समुदाय के सामाजिक अधिकार के लिए संघर्षरत अनुंबध साहित्य हैं।

दलित चेतना के संदर्भ में सहवर्ती या समानान्तर स्तरों पर चेतना के विकास को रेखांकित हो सकते हैं। एक स्तर वह है जिस पर तुलसीदास से लेकर गाँधी तक ऐसे उदार मतवादी सवर्णे का सिलसिला बनता है जिसके लिए दलित होना सहानुभूति का विषय होता है। दूसरा स्तर वह है जिस पर कबीर से लेकर ज्योति फूले और अम्बेड़कर तक उन भुक्तभागी निम्न वर्ण वालों की लम्बा सिलसिला बनता है जिनके लिए दलित होना उनके जीवन का निजी सत्य था और भयानक और असहाय सत्य था। इन दोनों स्तरों पर दलित आत्मा गौरव के विकास को जाँचने परखने में कई विवादों का हमें सामना करना पड़ता हैं। ऐसे विवादों से आशंकित नहीं होना चाहिए। पूर्वग्रह रहित होकर वस्तु परक समझदारी के साथ विश्लेषण का संकल्प अगर हमारा हो तो सामने आने वाले विवाद अक्सर उस संकल्प को एक खरी चमक ही देते है। गाँधीवादी विचार में अछूतों को पहली बार एक नया नाम दिया गया हरिजन मान सकते है कि यह महज एक निन्दावादी नाम के स्थान पर सम्मानजनक नाम को चून लेने भर का संकल्प नहीं था। यह अछूत समझे जाने

वाले वर्ग की अपमान जनक स्थितियों को सम्मानजनक स्थितियों में बदलने के लिए शुरू की गई लड़ाई का संकल्प था। पता नहीं गाँधी से किसी ने यह पूछा था कि नहीं हरिजन का हरि आखिर कौन है गाँधी के हरिजन का हरि क्या वह नहीं है जो मध्ययुगीन संतवाणी में यो प्रकट हुआ था। अगर गाँधी के हरिजन का हरि वही है तो फिर यह चेनता की अग्रगामिता की बात कैसे हुई यह तो चेतना के पश्चगामी होने का ही लक्षण हुआ। जाति–पाँति को लेकर कोई पूछाताछी न की जाए अपमानित न किया जाए इसके लिए हरि को होना अब भी जरूरी है यानी हरिजन होना। अछूत हरिजन तो हो गया लेकिन अधीनता की मानसिकता को उतार फेंकने की सीधी तैयारी करने वाला जन वह गाँधी की परिकल्पना में भी कहाँ हो पाया और इसी परिकल्पना की पारम्परिक पृष्ठभूमि के तौर पर तुलसी दास की सदाशयता की भी रहस्य सामने आ जाता है। राम से अधिक रामकर दासा का विश्वास दिलाने वाला भक्त कवि भी मनुष्य की श्रेष्ठता की घोषणा करने के नाम पर अखिर तो दासत्व की सार्थकता की ही घोषणा कर रहा था

जैसा कि जूठन में वाल्मीकि ने लिखा है अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुते–बिल्ली गाय–भैंस को छूना बूरा नहीं था लेकिन चुहडे का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे अपने आप में यह एक कटु सत्य है। इसमें कोई शक नहीं कि दलितों का घोर यातनापूर्ण जीवन था। लेकिन स्वर्ण वर्ग को यह बात कभी नहीं सुहाती थी कि अपने ही समान दो हाथ और दो पैरों वाले व्यक्ति को वे इंसान के रूप में जीवनयापन करने के अधिकार से भी निरंतर वंचित चले आ रहे हैं। स्कूल तक में सामान्य मनुष्य की तरह पानी पीने का अधिकार नहीं। कोई पिला दे तो पी लेते थे यहाँ गाँधी जी का जिक्र करना अनुचित नहीं होगा। वे शादी के सफेद कपड़े पहनते थे जमीन पर सोते थे। अगर कोई अध्यापक या बच्चा किसी दलित बच्चे को पानी पीने नहीं देता था या अपमान करता था या कोई गलत काम करता था तो वे ऐसे करने वाले व्यक्ति के पास जाकर अपने मुँह पर ताबड तोड चपत था उनके इस व्यवहार ने स्कूल के वातावरण में आमूल चूल परिवर्तन ला दिया था गाँधी के प्रभाव में परिवर्तन का एक श्रृंखला गुप–चुप रूप से गाँवों और शहरों में चल रही थीं। जो अछूतोधार की दृष्टि से परिवर्तन ला रही थी। लेखक प्रेमचन्द हों शैलेष मटियानी या फिर उपरोक्त गाँधी जी वे अपने–अपने ढँग और माध्यमों से परिवर्तन की इस लहर को आगे बढ़ा रहे थे। वाल्मीकि ने जूठन में लिखा है कि आजादी के आठ वर्ष बाद तक गाँधी जी के अछूतोधार की ध्वनि सुनाई पड़ती थी जो अब नहीं पड़ती शायद जरूरत भी नहीं। अब दलित वर्ग अपनी शक्ति से उस परिवर्तन को लाने के लिए कटिबध है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत अनेक कानून और अधिनियम होने के बावजूद अत्याचार की अनगिन घटनाएं प्रत्येक दिन, प्रत्येक घंटे में हो रही है। जिसकी ओर नागरिक समुदाय और राज्य भी रोजमर्रा की मामूली घटना समझते है। जबकि दलितों के शोषण होने की सिथति में उनकी सुरक्षा की जिम्मेवारी राज्य की है। लेकिन अनेक मामले में यह देखने में मिल रहा है कि राज्य खुद ही दलितों के साथ असंवेदनशील है और अत्याचारी जैसा

वर्ताव करता है। झज्जर तल्हन संतोषगढ में पुलिस द्वारा किए गए अत्याचार की घटनाएं हाल ही की है। दलित महिलाओं पर होने वाले बलात्कारों की संख्या खुद व खुद ब्यान करती है कि पुरुष की सामंती दृष्टि में दलित स्त्री केवल भोगदासी जातिगत विभाजन इंसानों को केवल उच्च और निम्न में ही नहीं बांटता बल्कि वह आर्थिक उत्पादन क्षेत्र और संसाधनों का बंटवारा जाति की श्रेष्ठता और कनिष्ठतर के आधार पर करती है और दलितों को इस सम्पूर्ण प्रकिया से बाहर भी रखती है। व्यवस्था और उत्पादन के साधनों पर दलितों का अधिकार न होना यही दर्शाता है। उन्हें जल, जमीन, जंगल पर के अधिकारों से तथा बाजार, उधोग व्यापार जैसे आर्थिक व्यवस्था के मूल आधारों पर के अधिकार से कोसों दूर वंचित रखा गया है। दलित समाज जो बुनियादी सुविधाओं से तो दूर ही ही आज भी सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से अनेक अभिशाप झेल रहा है। जब अपने लोगों की बात करते है तो खेतों खदानों एवं कारखानों में हांड़ तोड़ मशक्कत करते कम से कम मजदूरी के लिए भी रिरियाते दलित समुदाय आज भी कहीं न्याय नहीं पा रहे है। व्यवस्था ही उनका दमन नहीं कर रही है बल्कि लोकतान्त्रिक सताएं भी उनसे लगभग बेईमानी कर रही है

सदियों तक असपृश्य बनाकर रखे गए दलित समाज को अभाव भरा दरिद्र जीवन जीने के लिए बाध्य करके ही यह वर्चस्ववादी, सत्तधारी, सनातनी स्वर्ण समाज संतुष्ट नहीं हुआ। दलित जीवन को और अधिक जटिल और असहनीय बनाने के लिए, अपमानबोध को बढ़ाने के लिए दलितों के गले में मिट्टी का मटका और कमरा में झाड़ू बंधावा दिया। समाज को गुमराह करने वाले ब्राहाण वर्ग ने अस्पृश्यों की छाया तक से अपवित्र होने के ढोंग रचाया। इसे कोई तोड न पाए इसलिए जन्म और भाग्य का भय दिखाकर, दलितों के जीवन में अंधेरा भर दिया। इस खुदगर्ज समाज ने कभी नहीं सोचा कि एक इंसान दूसरे इसांन को केसे दासता की जंजीरों में जकड़ सकता है? लेकिन हिंदू धर्म की बुनियादी सोच इसी पर विश्वास करती है और इंसान इसांन में भेद करके, असमानता को बनाए रखकर स्वतंत्रता बंधात्वु को निषेध करती है क्योंकि ब्रहाणवाद श्रेष्ठ तथा सत्ताधारी बने रहकर वर्चस्व स्थापित करने में विश्वास करता है इस वर्चस्ववादी विचारधारा के विरोध में बुद्ध द्वारा प्रेरित बुद्वधर्म का प्रसार हुआ था। यह समानता स्वंतत्रता , न्याय और बंधात्व पर विश्वास करता है। श्रेष्ठ–अश्रेष्ठ के भेदभाव को मिटाकर समानता का सदेंश देता है। इसांन को उसके कर्म द्वारा श्रेष्ठत्व प्रदान करता है विज्ञानवादी और गतिशीलता विचारधारा का प्रसार करता है। जन्म के आधार पर वर्ण और जाति श्रेष्ठता का विरोध करता है। इस अब्राहाणवादी परम्परा स्वीकार का ही परिणाम महात्मा फुले और डॉ बाबा साहेब अंबेडकर के क्रमशः सत्यशोधक समाज आंदोलन और दलित मुक्ति आंदोलन है जिससे दलितों और वंचितों को अपने अस्तित्व का बोध कराया। दलित, शुद्र और स्त्री के लिए मनसमृति ने न केवल ज्ञान के द्वारा बंद रखे थे बल्कि वेद मंत्रों के उच्चारण करने या सुनने मात्र पर जीभ काटने और पिघलता सीसा कानों में डालने की कड़ी सजा के प्रावधान भी करके रखे थे। आज आजाद भारत में प्रत्येक भारतीय नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का सवैधानिक

अधिकार और अवसर होने के बावजूद शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत तथाकथित शिक्षक विधि विधानों के प्रभाव को छोड नहीं पाते। परिणाम हमारे सामने है सवैधानिक प्रावधानों के होते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में जातिवाद वर्चस्व का बोलबाला है और ऐसी हर संभव कोशिशें होती हुई दिखती है जिससे ज्ञान अर्जित कर दलित आदिवासी अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए संघर्ष का रास्ता ना अपनाएं। सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दबावों के अलावा दलित आदिवासी लडकियों को शिक्षा हासिल करने में पितृसत्तवादी दबाव झेलना पड़ता है। माता–पिता के काम पर जाते ही ज्यादातार लड़कियों पर छोटे भई बहनों की देखभाल की जिम्मेवारी आ जाती है। परिवार की आय बढ़ाने हेतु मजदूर माता–पिता की बेटियाँ बाल मजदूरी करने के लिए विवश होती है। लड़की शिक्षकों संस्थान के सदस्यों का भेदभावपूर्ण रवेया और माता पिता की उदासीनता तथा परम्पराओं के दबाव में भारत के ग्रामीण परिवारों की लडकियां अशिक्षित रहने की मजबूर कर दी गई है। इसांन के रूप में सम्मान से जीने का अधिकार पाने की उसकी लड़ाई तभी सफल हो सकेगी जब राज्य व समाज का रवैया संवेदनशील होगा। भविष्य में दलित अपने संघर्ष को तेज से तेजतर करके अपने मानवीय अधिकारों को हासिल करने की क्षमता व साहस का और भी गहरा परिचय देगा वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और अपने मुददों और दिक्कतों से पूरी तरह वाकिफ है। राज्य द्वारा दिखाए जाने वाले रवैये से वह निराश जरूर है लेकिन उसे अपने जन आंदोलन और प्रतिरोध की शक्ति पर पूरा भरोशा है। इनके सुखद जीवन जीवन जीने की चाहत तभी पूरी होगी जब दलितों के समक्ष खड़ी अनेक दिक्कतों को समझने व सुलझाने के प्रयास होगें। भूमिहीन दलित मजदूरी करके ही अपना और परिवार का भरण पोषण करते है। वे खेतां–खलिहानों, सड़क निर्माण, भवन ईट भट्टों पर काम करते हुए सड़क किनारे या कंटली झाटियों में कपड़े के झूले में अपने बच्चे को सुलाकर ठकेदारों, जमीदारों की झिडकियां खाने को मजबूर होते है। शाम को चूल्हा जलने की आशा में बच्चों को एक आधा रोटी देने की इच्छा से आग उगलते सूरज के ताप को सहते काम निबटाने की चिंता में मग्न दिखते है। अपना पेट काटकर बच्चों के लिए कॉपी पेंसिल खरीदते है। इस आशा में कि कल पढ़–लिखकर बेटा या बेटी उसे इस गुरबत की जिंदगी से बाहर निकालेगें। बच्चों को खिला पिलाकर चैन की नींद लेना भी उसके हिस्से में नहीं। उनके जेहन में तो रोटी और कपड़ों से ज्यादा कुछ नही है।

यह सर्वविदित है कि दलितों की आर्थिक बहुत दयनीय है। बहुत गरीबी है, दोनों बातें है–वर्ण–व्यवस्था ने समाज में असमानता पैदा की है श्रेणीनुमा ढाँचा पैदा किया है। इस तरह की व्यवस्था पैदा कर दलितों को शुद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया है। तो किसी को गुलाम बनाना हो तो उसे शिक्षा से, ज्ञान विज्ञान से वंचित रखा गया। मनूवादी व्यवस्था में पहला हमला यह किया गया कि शुद्रो एवं स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से चचित किया गया वंचित ही यथा ज्ञान, विज्ञान, धर्म, आदर्श की बात करने पर इनके उपर पूरी पाबंधी लगा दी गई। इतने अमानवीय कानून थे कि अच्छी बात कहने पर जवान काटने तथा अच्छी बात सुनने पर कान में पिघला हुआ शीशा डालने

के व्यवस्था थी। इस प्रकार की अमानुषिक वर्ण व्यवस्था में यदि दलितों पिछड़ों में इतनी अशिक्षा एवं अज्ञानता है रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नही। यही नहीं हिन्दू वर्ण व्यवस्था में यह व्यवस्था थी कि दलितों, शूद्रों की सम्पति रखने का कोई अधिकार नही है। जूठे बचे खाना, उतरे हुए फटे पुराने कपड़े पहनना उनकी नियति थी। हिन्दू वर्ण व्यवस्था ने उँच–नीच एवं जाति –पाँति की भावना पैदा की। जाति पाँति, छुआछूत एवं उँच नीच की भावना एक रूढ़ि नहीं रही बल्कि धर्म का रूप धारण कर लिया। इसे वेद पुराणों स्मृतियों ने पुखता किया। इस व्यवस्था ने मुट्ठी भर लोगों को विशेषधिकार सम्पन्न किया तथा बहुमत को मेहनतकर्शो को अनके नैसर्गिक अधिकार से वंचित किया। इससे भी यह बात स्पष्ट है कि अर्थ व्यवस्था सभी व्यवस्थाओं की नींव होती है एवं मानव जीवन के सभी अवयवों को प्रभावित करती है। उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त दलित जीवनर में अन्य कई समस्याएँ मिलती है जो किसी न किसी रूप में उल्लेखित समस्याओं में जुड़ी हुई है। इनमें एक अमानवीयता की समस्या है। दलित जाति के लोगों में यह समस्या ज्यादा पाई जाती है क्योंकि उच्चवर्ग के द्वारा अत्याचार और शोषण को सहन–सहन कर उनकी भावना मर जाती है। जिससे मनुष्य अमानवीय हो जाता है समाज की उँची जातियों के लोग सदा से ही दलित जाति को नीच छोटी समझ वाले मानते आए है। गंदगी भी एक समस्या है। दलित वर्ग के लोगों में गंदगी पायी जाती हैं। इसके कई कारण हैं पर मुख्य कारण तो गरीबी है। गरीबी और गंदगी में चोली दामन का साथ रहता है। दूसरे इन जातियों को प्रारम्भ से गंदे गलीच कामों से जोड़ा गया है। उसे सहने की एक आदत भी पड़ जाती है।

1. सदानंद शाही दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, पृ. स. 161
2. विमल थोरात दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, पृ. सं. 103
3. वहीं, पृ. 104
4. गिरिजकिशेर दलित विमर्श संदर्भ गाँधी, पृ. सं. 29
5. वही, पृ. सं. 29
6. सदानंद शाही दलित साहित्य की, अवधारणा और प्रेमचन्द, पृ. सं. 163
7. गिजिराकिशोर दलित विमर्श संदर्भ गाँधी पृ. सं. 23
8. वही, पृ. सं. 36
9. कल्पना गवली प्रेम तथा शैलेस मटियानी की कहानियों में दलित विमर्श, पृ सं. 165